अध्यात्म भारत की आत्मा है

डॉ0 कृष्ण गोपाल

महात्मा गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय
मोतिहारी (बिहार)
2020

भूमिका

श्री श्याम नन्दन
सहायक अध्यापक
हिन्दी विभाग
महात्मा गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय
मोतिहारी, बिहार

मध्यकालीन भक्ति आंदोलन भारतीय समाज की उत्कट जिजीविषा और जीवंतता का प्रमाण है। जिस समय विदेशी बर्बर आक्रांताओं के मजहबी उन्मादी हमले से पूरे भारतीय समाज की संरचना छिन्न–भिन्न हो रही थी, जिस समय समस्त हिंदू समाज संकुचित होकर रूढ़ि–ग्रस्त होता चला जा रहा था, जिस समय भारतीय समाज के उदात्त जीवन मूल्य का लगातार अवमूल्यन हो रहा था, ऐसे समय में संतों ने समाज जागरण का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। संतों की सामाजिक चेतना के साथ ही उनकी आध्यात्मिक चेतना को हिंदी साहित्य की ही नहीं बल्कि पूरी भारतीय सामाजिक–दार्शनिक परंपरा के संदर्भ में देखे जाने की आवश्यकता है। जाति के आधार पर खंडित होते और धीरे–धीरे क्षीणप्राय होते जा रहे भारतीय समाज से जातिगत भेद–भाव हटाकर उसे एक सूत्र में बाँधने का महत्त्वपूर्ण कार्य संतों ने किया है। संत साहित्य का भारतीय सनातन धर्म और भारतीय अध्यात्म से अविच्छिन्न सम्बन्ध है। सहज जीवन के समर्थक संतों ने सनातन धर्म में आ गई रूढ़ियों का विरोध कर उसका वास्तविक मर्म समझाने और कर्म आधारित धर्म के सिद्धांत को परिपुष्ट करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। अधिकतर संत श्रमजीवी साधक थे, जिन्होंने

भारतीय अध्यात्म के क्षेत्र में भी 'श्रम की संस्कृति' को स्थापित किया है। लोक से जुड़ाव संत आंदोलन की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है।

स्त्री दृष्टि से भी संत साहित्य के पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता है। भक्ति काल में तमाम सामाजिक बंधनों के बावजूद जनता का जागरण करते हुए भाँति–भाँति की रूढ़ियों से समाज को मुक्त कराने का प्रयत्न कर रही महिला संतों की एक लंबी श्रृंखला है। मध्यकालीन संत आंदोलन के अंतर्गत जितनी बड़ी संख्या में महिला संत अध्यात्म आधारित रचनाएँ कर रही थीं, उतनी बड़ी संख्या में यूरोपीय रेनेसां में भी इतनी प्रखर चेतना की स्त्री रचनाकार दिखाई नहीं पड़ती हैं।

पूरे संत आंदोलन में मुस्लिम संत कवियों की एक ऐसी धारा भी दिखाई पड़ती है, जिन्होंने हिंदू देवी–देवताओं को ही अपना आराध्य मानकर साहित्य सृजन किया है। उनका धार्मिक–आध्यात्मिक लगाव विदेशों की अपेक्षा भारत–भूमि और भारतीय संस्कृति से अधिक है। मुस्लिम संत और भक्त कवियों का योगदान भारत की सामाजिक संरचना के सुदृढ़ीकरण में अति महत्त्वपूर्ण और प्रासंगिक है।

मजहबी उन्माद से उन्मत्त मुस्लिम शासक जब पूरे भारत को 'दारुल इस्लाम' में परिवर्तित कर देने के लिए प्रयत्नशील थे, तब देश–धर्म के रक्षार्थ संतों द्वारा सेना तैयार कर सशस्त्र संघर्ष करना संत–आन्दोलन का एक महत्त्वपूर्ण आयाम है।

भक्ति आन्दोलन और संत साहित्य पर विपुल साहित्य रचा गया है। विविध दृष्टियों से अकादमिक जगत और इसके

बाहर बहुत से कार्य निरंतर होते रहे हैं, किन्तु भारत की महान आध्यात्मिक परम्परा में इस आन्दोलन को देखने–समझने और उसे व्याख्यायित करने की दृष्टि मुझे माननीय कृष्ण गोपाल जी से मिली है। मुझे लगता है कि भक्ति आन्दोलन को व्याख्यायित करने की यह दृष्टि अत्यंत महत्त्वपूर्ण और समीचीन है। इसलिए भक्ति के अध्येताओं तक इसे पहुँचाना न केवल आवश्यक है बल्कि एक अकादमिक अध्येता का धर्म भी है। मुझे माननीय कृष्ण गोपाल जी को भक्ति और संत परम्परा पर सुनने का सौभाग्य मिला है। मैं अपना धर्म समझते हुए इसे अकादमिक जगत तक पहुँचाने का प्रयास कर रहा हूँ। इस कार्य को मूर्त रूप देने का श्रेय महात्मा गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. संजीव कुमार शर्मा को है जिनके आशीर्वाद और मार्गदर्शन से ही यह सम्भव हो सका है। यह पुस्तिका भक्ति के अध्येताओं के लिए महत्त्वपूर्ण होगी और अकादमिक अध्ययन को एक नयी दिशा देगी, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।

डॉ0 कृष्ण गोपाल–जीवन वृत्त

प्रखर राष्ट्रवादी चिंतक एवं विचारक डॉ. कृष्ण गोपाल का जन्म सन 1955 में मथुरा जिले में हुआ। बाल्यकाल से ही डॉ0 गोपाल राष्ट्रीय विचारों से ओत–प्रोत एवं राष्ट्र चेता थे। विज्ञान में स्नातक के उपरांत आपने आगरा विश्वविद्यालय (वर्तमान में डॉ. भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय), आगरा से ही परास्नातक भी उत्तीर्ण किया। इसके बाद इसी विषय में आपने पी–एच.डी. की उपाधि भी ग्रहण की।

डॉ0 कृष्ण गोपाल ने बाल्यावस्था में ही अविवाहित रहकर राष्ट्रसेवा का महाव्रत लिया। सम्प्रति पिछले चार दशकों से आप राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रचारक हैं। उत्तर प्रदेश के कई जनपदों में आप प्रचारक रहे। कई स्तरों पर जैसे तहसील, जिला, विभाग एवं प्रांत– प्रचारक के दायित्व का निर्वहन आपने उत्तर प्रदेश में किया। इसके उपरांत आप उत्तर–पूर्वी भारत में भी विविध भूमिकाओं में रहे। उत्तर पूर्वी भारत में आपने क्षेत्र प्रचारक रहते हुए संघ के कार्य को गतिशील ही नहीं बनाया बल्कि क्षेत्र को ईसाई मिशनरी के कुचक्र से मुक्त कर सुदूर क्षेत्रों तक संघ की पहुंच सुनिश्चित की। आपने संघ को पूर्वोत्तर में जनोन्मुखी बनाया एवं लोगों में राष्ट्र भाव को जाग्रत करने हेतु प्राण पन से सन्नद्ध भी रहे। 9 वर्ष उत्तर–पूर्वी भारत में रहने के पश्चात् वर्ष 2012 में आप राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के अखिल भारतीय सह–सरकार्यवाह बनाए गए।

आपकी विशेष रुचि, अध्ययन एवं विशेषज्ञता अनेक विषयों में है। डॉ0 भीमराव अंबेडकर, पर्यावरण, संत साहित्य, इतिहास,

सनातन परम्परा, भारतीय संस्कृति एवं ज्ञान मीमांसा, आदि विषयों पर आपके आलेख एवं उद्‌बोधन अविस्मरणीय हैं। आप एक प्रखर एवं ओजस्वी वक्ता, राष्ट्रनिष्ठ चिंतक और बहुमुखी प्रतिभा से संपन्न व्यक्तित्व हैं।

वर्तमान में आप राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सह सरकार्यवाह हैं। राष्ट्र के सजग प्रहरी के नाते आप अपनी सक्रिय भूमिका का निर्वहन करने हेतु सतत संकल्पित हैं।

अध्यात्म भारत की आत्मा है

डॉ0 कृष्ण गोपाल
वरिष्ठ सामाजिक चिन्तक

सभी को मेरा नमस्कार। 'महात्मा गाँधी केंद्रीय विश्वविद्यालय' द्वारा आयोजित संगोष्ठी में मुझको आमंत्रित करने के लिए आपका आभार व्यक्त करता हूँ। संत साहित्य और उसके सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, राष्ट्रीय सरोकारों पर चर्चा चल रही है और पहले के वक्ताओं ने भी बड़ा अच्छा अध्ययन करके संत साहित्य के संबंध में उद्‌गार व्यक्त किए हैं। वे अभी साहित्य के अध्ययनशील व्यक्ति हैं। मैं साहित्य का विद्यार्थी नहीं हूँ, रास्ता चलते–चलते कुछ अध्ययन किया है। गंभीर अध्ययन करने के लिए न समय है, न वैसी मेरी योग्यता है और न ही पात्रता है, फिर भी आप लोगों ने बुलाया है, तो मैं आपलोगों को आभार व्यक्त करता हूँ।

पहली बात तो यह है कि संत साहित्य, आध्यात्मिक लोगों का साहित्य है। यह आंदोलन, संत आंदोलन नहीं है, यह आंदोलन 'आध्यात्मिक आंदोलन' है। इस देश की जो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात है– वह अध्यात्म है। इस देश की आत्मा 'अध्यात्म' है। अध्यात्म इस देश के सभी विषयों पर अपना प्रकाश डालता है। जीवन के सभी अंगों को कहीं न कहीं दिशा–निर्देशित करता है। किसी भी समाज में एक समय के पश्चात समस्याएँ खड़ी हो जाती हैं, व्यवस्थाएँ कितनी भी सुंदर करके रख दी जाएँ, बना दी जाएँ, वो टूट जाती हैं। बहुत अच्छा शासक आता है, बहुत

अच्छी शासन व्यवस्था बना देता है और दो सौ–तीन सौ वर्षों तक व्यवस्थाएँ कभी–कभी चलती हैं, बाद में टूट जाती हैं, सब कुछ बिखर जाता है। जो आज स्थिर दिख रहा है, वह कल स्थिर रह सकता है, इसकी गारंटी नहीं है और जब बिखरता है तो संभाले कौन? भारत एक ऐसा देश है, जिसमें इन सारी व्यवस्थाओं के बिखरने पर भारत का जो आध्यात्मिक दर्शन है, भारत की जो आध्यात्मिक दिशा है, वह बिगड़ी हुई व्यवस्थाओं को फिर से बनाने की कोशिश करता है। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व्यवस्थाएँ बिगड़ जाएँ, सांस्कृतिक विकृतियाँ आ जाएँ, अध्यात्म उसको दिशा देकर सुधारने का प्रयत्न करता है। ऐसा नहीं है कि भारत में संत आंदोलन पहली बार मध्यकाल में ही हुआ, बल्कि ऐसे आंदोलन हर युग में होते रहे हैं। भारत में वैदिक ऋषियों का भी एक आंदोलन हुआ था। ऋग्वेद के ऋषियों के पहले भी कोई व्यवस्था होगी, वह व्यवस्था बिगड़ी होगी। वैदिक ऋषियों का एक काल रहा होगा, उस काल में वह आंदोलन एक सुधारवादी आंदोलन रहा होगा। उन सिद्धांतों को लेकर वैदिक ऋषियों ने आंदोलन किए होंगे। वैदिक ऋषियों ने उन सिद्धांतों को प्रतिपादित किया, उन सिद्धांतों की व्याख्या की। आखिर एक वैदिक ऋषि को यह बोलने की क्या आवश्यकता थी 'एकं सत् विप्राः बहुधा वदंति'। वह ऋषि कितना बड़ा आंदोलनकारी होगा, जो सभी लोगों में एकात्मबोध की दृष्टि रखकर समाज को निर्देशित करता है, 'इंद्र मित्रम वरुणम अग्निं..' बोलता है। इंद्र भी हैं, मित्र भी हैं, अग्नि भी हैं, ऐसे बहुत सारे देवता हैं और लोग भिन्न–भिन्न देवताओं की पूजा करते हैं लेकिन ध्यान में रखो कि सत्य एक ही है। ऐसा कहने वाला ऋषि आंदोलनकारी नहीं है तो क्या है? वह दिशा का दर्शन कराता है। वैदिक युग में संपूर्ण

समाज को आध्यात्मिक दिशा और दृष्टि प्रदान करके समाज को एक खूँटे से बाँध देता है। फिर विकृति आती है, वैदिक दर्शन छिप जाता है, कर्मकांड प्रकट होने लगते हैं। वह व्यय साध्य है, समय साध्य है। समाज का एक वर्ग उन कर्मकांडों से दूर रहता है। उनको समझ में नहीं आता कि यह जो बड़े–बड़े यज्ञ चल रहे हैं, इनका मतलब क्या है? इनका अर्थ क्या है ? इनमें उच्चरित होने वाले बड़े बड़े जो मंत्र है, उनका भाव क्या है ? वह चुपचाप शांत बैठा रहता है। कर्मकांडों के अतिरेक के बाद एक नया आंदोलन होता है और औपनिषदिक ऋषि खड़े होते हैं। वैदिक कर्मकांडों को हटाकर वे मूल दर्शन को उपनिषदों में व्यक्त करते हैं और उसको प्रतिपादित करने का प्रयास करते हैं। वे समाज को फिर से सैद्धान्तिक, वैचारिक, दार्शनिक खूँटे में बाँधकर एक सूत्र में व्यवस्थित कर देते हैं।

समाज में फिर विकृतियाँ आती हैं, कुरीतियाँ बढ़ती हैं, ढोंग और पाखंड बढ़ जाता है, मूल दर्शन फिर छिप जाता है। तब बुद्ध प्रकट होते हैं और एक नई आध्यात्मिक, दार्शनिक क्रांति करते हैं। फिर गड़बड़ हो जाता है तो शंकर दिखते हैं। वह एक नयी परम्परा शुरू करते हैं किन्तु मूल दर्शन वही रहता है। फिर समाज को लाकर उस दार्शनिक खूँटे में बाँध देते हैं। फिर विकृति आती है, फिर कोई ऐसा ही आन्दोलन खड़ा होता है। उसी परंपरा में 11वीं–12वीं शताब्दी में देश में एक आध्यात्मिक आंदोलन खड़ा हुआ जिसे हम लोग 'संत आंदोलन' या 'भक्ति आंदोलन' कहते हैं। उस समय की परिस्थितियों से हम सब परिचित हैं। राजनीतिक दृष्टि से देश पराधीन हो गया, राजा हार गए, सेनाएं हार गईं, हिंदुओं के अपने विशाल मंदिर, जो एकत्रीकरण और श्रद्धा के

केंद्र थे, तोड़ दिए गए। समाज निराश्रित, किंकर्तव्यविमूढ़ और दिशाहीन हो गया। बड़े–बड़े विश्वविद्यालय, विद्यालय, गुरुकुल, बड़े–बड़े ग्रंथालय, पाठशालाएं, मंदिर, सेना, राजा कुछ भी नहीं बचा तो समाज कहाँ जाए ? एक ओर ऐसा दिग्भ्रमित, दिशाहीन, नेतृत्वहीन समाज है और दूसरी ओर एक बड़ा शत्रु जो इसको तत्काल निगल जाने के लिए खड़ा है, जो आक्रमणकारी शासन के रूप में स्थापित भी है और शक्ति संपन्न भी है। ऐसा शासकीय वर्ग, जो हिंदू समाज को समाप्त कर देने के लिए संकल्पित है, वह किसी न किसी रूप में हिंदू समाज को इस्लाम में मतांतरित करने की प्रतिज्ञा करके ही आया है। ऐसे समय में हिंदू समाज बँटा हुआ, बिखरा हुआ, नेतृत्वहीन भिन्न–भिन्न प्रकार की रूढ़ियों में फँसता चला जाता है।

तत्कालीन परिस्थितियों में सामाजिक–चिंतन का अभाव था। सब को एक साथ मिलकर बैठने का अवसर और वातावरण भी नहीं था। समाज टुकड़ों में विभाजित होता जा रहा था। छोटे–छोटे घेरे में आबद्ध होकर, अपने आप को सुरक्षित समझने वाला समाज तैयार हो गया था। तत्कालीन परिस्थितियों में सब ने अपने–अपने बाड़े बना लिए थे। ये बाड़े जाति के थे, गाँवों के थे, वर्गों के थे, अपने छोटे–छोटे संप्रदायों के थे, भाषाओं के थे। ऐसी परिस्थिति में सब को मिलाकर प्रकट होने वाली जो सामाजिक एकता है, वह दिखाई नहीं देती है। राष्ट्रीय एकात्मबोध भी लुप्त हो जाता है। महिलाओं की स्थिति और कठिन हो जाती है। शिक्षा के केंद्र नष्ट हो जाने से लौकिक शिक्षा का सर्वथा अभाव दिखता है। गुरुकुल और पाठशालाओं के नष्ट हो जाने से संस्कार की भी कमी हो जाती है। परकीयों का शासन,

धर्मांतरण का संकट, खंड–खंड बँटा हुआ समाज, अपने जाति, वर्ग, वर्ण, भाषा, क्षेत्र आदि में सिमटा हुआ समाज, भिन्न–भिन्न प्रकार की कुरीतियों से बँधा हुआ समाज, बढ़ते हुए ढोंग और पाखंड वाला समाज, पारस्परिक एकात्मबोध और सामाजिकता से दूर होते सामाजिक परिदृश्य में जो आध्यात्मिक आंदोलन खड़ा होता है, वह सब को एक समान मानता है, देश को एक मानता है, समाज को एक मानता है और सारी भाषाओं का घेरा तोड़कर राष्ट्रीय एकात्मबोध को स्थापित करने का प्रयास करता है। सारे ढोंग और कुरीतियों को बेकार मानकर, प्रभु की आराधना को ही परम सत्य मानता हुआ अध्यात्मिक संदेश देता है। जिस समाज को वाणी नहीं, मंत्र नहीं और जिस समाज के पास नेतृत्त्व नहीं, आत्मविश्वास नहीं, जिस समाज में स्वाभिमान नहीं, संघर्ष–भाव नहीं, उसमें इन सब बुराइयों को दूर करके जो सद्गुणों की स्थापना करता है, उस आंदोलन का नाम है – संत आंदोलन या भक्ति आंदोलन। कुछ प्रगतिशील लोग कहते हैं कि अगर भक्ति आंदोलन ने जाति के विरुद्ध आंदोलन किया तो जाति समाप्त क्यों नहीं हुई ? जाति समाप्त नहीं हुई तो भी यह भक्ति आंदोलन के आँकलन एवं मूल्यांकन का विषय भी नहीं। भक्ति आंदोलन के मूल्यांकन का विषय यह है कि उस कठिन समय में भी उन्होंने भक्ति आंदोलन चलाया।

अगर यह कहा जाए कि अंबेडकर और गाँधी जी ने आंदोलन किया फिर भी देश से ऊँच–नीच की मानसिकता नहीं गई, इसका मतलब यह निकलेगा कि इन सभी लोगों के संघर्ष और आंदोलन बेकार गए ? ऐसा नहीं है, ये प्रयास बेकार नहीं गए। सब के प्रयास सफल हैं। सफलता के मानक अलग हैं।

उस समय ये लोग आंदोलन करने के लिए खड़े हुए, आवाज उठाई, उतना ही पर्याप्त था। लोगों ने उनकी आवाज दबाने की कोशिश की होगी, कुछ लोग साथ आए होंगे, कुछ नहीं। कुछ ने बात सुनी होगी, कुछ ने नहीं। कुछ ने मानी होगी, कुछ ने नहीं मानी होगी। उस समय प्रतिकूल परिस्थितियों में उन्होंने आवाज उठाई, उतना ही पर्याप्त है। आवाज उठाना ही उनकी सफलता का द्योतक है। इस आंदोलन का समुचित मूल्यांकन करने से पूर्व इस आंदोलन की जो पूर्वपीठिका है, उस समय का जो सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, आर्थिक, नैतिक परिदृश्य है, उसका अध्ययन करना और भलीभाँति समझना आवश्यक है। लोग इस आन्दोलन का आरम्भ 11वीं–12वीं शताब्दी से मानते हैं, पर मैं मानता हूँ कि आध्यात्मिक आंदोलन एक सतत प्रक्रिया है। ऐसा मानिए की गंगा बह रही है और आवश्यकता के अनुसार उसमें हम नहर निकाल लेते हैं। भारत की आध्यात्मिक धारा गंगा की तरह है। हम कह सकते हैं कि 11वीं–12वीं शताब्दी में प्रकट हुआ संत आंदोलन–भक्ति आंदोलन, उस आध्यात्मिक गंगा की एक नहर है, जो उस समय की आवश्यकताओं के अनुसार निकली और अपना लक्ष्य पूरा किया। वर्तमान में इनका अध्ययन और मूल्यांकन करते समय उसके मौलिक सरोकारों और तत्कालीन परिस्थितियों में उनके योगदान को दृष्टिगत रखना होगा।

उदाहरण के लिए एक दिन हमें बंगाल के एक विद्वान जो फिजिक्स के बड़े प्रोफेसर थे, मिल गए। उन्होंने कहा कि चैतन्य महाप्रभु ने 'हरि बोल–हरि बोल' सिखा कर बंगाल के लोगों को अकर्मण्य बना दिया। मैंने कहा कि चैतन्य महाप्रभु

आज से लगभग 500 वर्ष पूर्व हुए थे और बंगाल पराधीन हुआ– 1205 या 1206 ई. में, जब बख्तियार खिलजी ने बंगाल को पराधीन कर, लूट कर, राजा को नष्ट कर दिया। 1206 ई. से लेकर 15वीं–16 वीं शताब्दी तक लगभग 400 वर्षों तक वहाँ कोई भी आंदोलन खड़ा नहीं हुआ। चैतन्य महाप्रभु एक युवक है, जो एक बड़े महाविद्यालय का अत्यंत विद्वान प्राध्यापक है, व्याकरण और संस्कृत का बड़ा मर्मज्ञ है, अच्छे ग्रंथों का लेखक है। वह भक्ति आंदोलन खड़ा करता है। वह समझ जाता है कि बंगाल में कुछ भी बड़ा करना संभव नहीं, तब भी 'हरि बोल' जैसे दो शब्द बुलवाकर वे गली–गली, गाँव–गाँव कीर्तन करने लगे। झाल–मजीरे बजने लगे। सौ–दो सौ लोग स्थान पर आने लगे। 'हरि बोल–हरि बोल' कीर्तन होने लगा और एक दिन ऐसा हुआ कि वहाँ के काजी और कुछ लोगों ने मिलकर चैतन्य महाप्रभु के विरोध में शिकायत कर दी। वहाँ के काजी ने यह फरमान जारी कर दिया कि जो 'हरि बोल' बोलेगा उसको हम जेल में डाल देंगे। सभी लोगों ने 'हरि बोल' बंद कर दिया। चैतन्य महाप्रभु जब नवद्वीप आए तो लोगों ने बताया कि प्रभु जी यहाँ तो फरमान जारी हो गया। आदेश निकल गया है कि अगर 'हरि बोल' बोलेंगे तो जेल भेज दिए जाएँगे। चैतन्य महाप्रभु ने कहा कोई बात नहीं, मैं बताता हूँ। उन्होंने करताल, झाल– मजीरा लेकर दो तीन लोगों को इकट्ठा किया और सड़क पर आकर गाना शुरू कर दिया। लोग अपनी खिड़कियों से देख रहे थे कि ये लोग तो अब जेल चले जाएंगे। प्रभु गाते रहे। पाँच–दस मिनट बाद लोगों को दया आ गई। दो–तीन लोग और आ गए अब पाँच–सात लोग हो गए। प्रभु आगे बढ़ गए, सौ–डेढ़ सौ लोग हो गए। अब लोग आने लगे, संख्या बढ़ी तो लोगों का आत्मविश्वास बढ़ता गया।

सभी लोगों ने निर्णय लिया कि अब काजी महोदय के घर चलते हैं। काजी महोदय के घर चलते–चलते वह हजार–दो हजार हो गए। जिसके घर में जो भी वाद्य यंत्र था, लेकर आ गये। काजी महोदय की बड़ी सी हवेली थी। उसी के बाहर कीर्तन होने लगा। इतने सारे लोगों के एक साथ आ जाने से काजी डर गया। दरवाजा खुला तो सब हवेली के अंदर प्रवेश कर गए। हवेली के आंगन में कीर्तन होने लगा। लोगों ने पूछा काजी महोदय कहाँ हैं? तो पता चला कि कमरे में डरे हुए बैठे हैं। सब उनके पास गए और बोले प्रभु आप बाहर आइए, हम आपके दरवाजे पर आये हैं। बड़े सम्मान के साथ काजी के गले में माला डाल कर उन्हीं के घर के आँगन में ले आए। सभी लोग वृत्ताकार मंडल बनाकर जोर–जोर से गाते रहे, नाचते रहे। 'हरि बोल–हरि बोल–हरि बोल' का कीर्तन चलता रहा। पंद्रह–बीस मिनट तक तो काजी देखते रहे, सब काजी को देख हँसते हुए 'हरि बोल' बोल रहे थे। 15–20 मिनट बीतने के बाद काजी भी 'हरि बोल–हरि बोल' बोलने लगे, नाचने लगे। उनके घर के सभी लोग नाचने। काजी महोदय ने यह फरमान निकाला कि 'हरि बोल' से प्रतिबंध हटा दिया गया है। काजी महोदय ने स्वयं चैतन्य महाप्रभु से दीक्षा ले ली और वैष्णव हो गए। वह 'हरि बोल – हरि बोल' काजी महोदय के घर से बाहर निकल कर सारे देश में व्याप्त हो गया। आज दुनिया के सैकड़ों देशों की सड़कों पर 'हरि बोल–हरि बोल' होता है। मास्को, बीजिंग, न्यूयार्क, लंदन की सड़कों पर लोग 'हरि बोल–हरि बोल' बोलते हैं। वहाँ के पढ़े–लिखे लोग, वहाँ के उद्योगपति भी 'हरि बोल–हरि बोल' बोलते हैं। अब बताइए यह आंदोलन सफल है कि असफल? जब मैंने प्रोफेसर महोदय को यह सुनाया तो वह भी आश्चर्यचकित हो गए। उन्होंने कहा कि

मैंने ऐसा देखा ही नहीं। मैंने कहा – आपने इस आंदोलन को ही नहीं देखा। आपने संत आंदोलन का अध्ययन ही नहीं किया। आपने कुछ तथाकथित प्रगतिशील लोगों का लेख पढ़ लिया है। उसको लेकर आप प्रभावित हो गए। आपकी प्रज्ञा, आपकी बुद्धि कहाँ गई है? चैतन्य महाप्रभु ने तो मरे हुए बंगाल में क्रांति लाने का कार्य किया। लाखों–करोड़ों चुपचाप शांत बैठे हुए, भीरु बने लोगों को 'हरि बोल–हरि बोल' कहते हुए सड़कों पर तब उठा कर लाया, जब राजा हार गये, सेना हार गई, कोई शक्ति नहीं बची। इस विपरीत स्थिति में भी ऐसे निःशक्त लोगों को, ऐसे कमजोर–बुजदिल लोगों को हिम्मत दिला कर सड़कों पर लाकर जो कीर्तन कराता है, दुनिया के सैकड़ों देशों में इस आंदोलन को ले जाता है, वह व्यक्ति असफल है? यह कौन सी दृष्टि है? अपने को तथाकथित प्रगतिशील और बुद्धिमान मानने वाले लोगों ने इस आंदोलन के सरोकारों को न देखा, न समझा। अध्यात्म सुनते ही उनको मिर्गी आ जाती है। अध्यात्म दर्शन सुनते ही उन पर पागलपन सवार हो जाता है। उसको नष्ट करने का प्रयास करने लगते हैं। अतः प्रगतिशील लेखकों के लेखों को पढ़ते हुए यह ध्यान रखना चाहिए कि ये लोग भारत के आध्यात्मिक–दर्शन को समाप्त करने के लिए प्रतिबद्ध हैं।

11वीं–12वीं शताब्दी में रामानंद दक्षिण में खड़े होते हैं और उस समय के विकारों–कुरीतियों को मिटाने हेतु आगे बढ़ते हैं। उनके गुरु ने मन्त्र देते हुए कहा कि इस मन्त्र को तुम अपने तक ही रखना, औरों को बताओगे तो नर्क में चले जाओगे। मंदिर के गोपुर के ऊपर खड़े होकर रामानंद 'ओम नमो नारायणाय' का वह मन्त्र सबको बता देते हैं। ऊँच–नीच

का भेद बिना माने जिनको बताते हैं, उनमें तथाकथित शूद्र भी हैं, सफाई करने वाले भी हैं, कपड़ा धोने वाले भी हैं, कर्मचारी भी हैं। कह सकते हैं कि ऊँच–नीच का कोई भी भेद माने बिना रामानुजाचार्य एक नया आंदोलन खड़ा करते हैं। अपने गुरु की बात भी नहीं मानते क्योंकि रामानुज जाति का भेद नहीं मानते थे। हम कह सकते हैं कि भारत के अध्यात्म ने उस समय की कुरीतियों–ढोंगों को दूर करने के लिए जो करवट ली, उसका नाम रामानुज है। वह ब्राह्मण कुल में जन्म लेते हैं लेकिन जब स्नान करने जाते हैं तो अपने दो शूद्र बंधुओं के कंधे पर हाथ रखकर ही जाते हैं। लोगों के टोकने पर कहते है कि अपनी बुद्धि विकसित करो। एक मुस्लिम बालिका बीवी नाच्चियार को मंदिर में शरण देते हैं। वह बालिका मंदिर में नृत्य करती है, भगवान कृष्ण की आराधना करती है, प्रसाद भी लगाती है और आरती में शामिल होती है। रामानुजाचार्य उस मुस्लिम बालिका बीवी नाच्चियार की समाधि अपने मंदिर में ही बनाने का निर्देश भी देते हैं। समाज में जो विभिन्न प्रकार की विकृतियाँ आ गई थीं, विभेद की जो दीवारें खड़ी हो गई थीं, उनको मिटाने की कोशिश करते हैं। इसी तरह रामानंद जी का उल्लेख किया जाता है। रामानंद जी काशी के बड़े विद्वान हैं। वे दशरथ के पुत्र राम का उल्लेख करते हैं। लोक भाषाओं में प्रभु की अर्चना–आराधना करने का प्रयत्न सर्वप्रथम रामानंद जी ने ही किया है। रामानंद की "आरति कीजै हनुमान लला की" जो आरती है, वह हिंदी में पहली आरती है। उसके पहले लोक भाषाओं में प्रभु की अर्चना या आरती या स्त्रोत लिखना संभव नहीं था। लोग खराब मानते थे। लोगों को अनुमति भी नहीं थी। जो लिखता था, उस पर टीका–टिप्पणी भी होती थी। रामानंद संस्कृत के बड़े विद्वान

हैं। संस्कृत में भी बड़े ग्रंथ लिखते हैं और लोकभाषा में प्रभु की आराधना लिखकर, जो चलता आ रहा प्रतिबंध है, उसको हटा देते हैं। वह जानते हैं कि सामान्य जन इतना विद्वान नहीं है। सामान्य जन आध्यात्मिक साहित्य में क्या प्राप्त करेगा? वेदों में, मंत्रों में, ऋचाओं में सामान्य जन के लिए क्या है? सारे आंदोलन को लोकोन्मुखी बनाने का कार्य रामानंद ने किया। यह भक्ति आंदोलन का दूसरा बड़ा मोड़ है। उन्होंने दीक्षा देने में भेद नहीं किया। महिलाओं को भी दीक्षा दी एवं जो अब्राह्मण थे, उन्हें भी दीक्षा दी। विशेषकर जो अब्राह्मण थे, वह समाज में स्थापित भी हुए और उनको प्रसिद्धि भी अधिक मिली। कबीर, रैदास, पीपा, धन्ना, रामानंद के शिष्य हैं। ये लोग काशी के पंचगंगा घाट पर रामानंद जी के पास आते हैं और दीक्षा लेते हैं। इन सबका जो विचार, दर्शन और आध्यात्मिक दृष्टि है, वह रामानंद ने ही दी है। ये सभी अपने परिवेश में, अपने–अपने क्षेत्र में, अपनी–अपनी भाषाओं को लेकर खड़े हो गए और आंदोलन ने एक नई करवट ली।

ये आंदोलन इतने व्यापक हैं कि भारत के किसी भी प्रांत को, किसी भी भाषा को, किसी भी क्षेत्र को नहीं छोड़ते हैं। तमिलनाडु में वैष्णव संत आलवार भी हैं और शैव संत नायनमार भी हैं। सब प्रभु की भक्ति में मगन हैं। हम आंध्र, उड़ीसा, बंगाल, पूर्वांचल आदि में देखें तो वहाँ भी संत लोग खड़े हैं। कोई भी प्रांत ऐसा नहीं, जहाँ पर संत न खड़े हुए हों। ग्रियर्सन और बर्नेट नामक दो विद्वान हैं, जिन्होंने संत साहित्य पर अच्छा अध्ययन किया है। उन्होंने कहा है कि कौन सी ऐसी शक्ति थी कि जो भक्ति आंदोलन को दक्षिण से उत्तर, उत्तर से दक्षिण, पूरब से

पश्चिम और पश्चिम से पूरब – सारे देश में एक बिजली की चमक की तरह फैला देती है ? कौन नियंत्रित कर रहा है इसको? कुछ समझ में नहीं आता। तमिलनाडु में आलवार–नायनमार खड़े हैं। उनमें सभी जातियों के लोग हैं। कश्मीर में लल्लेश्वरी खड़ी हैं, नन्द ऋषि खड़े हैं। आज तक पता ही नहीं कि लल्लेश्वरी कौन सी बिरादरी से हैं? महाराष्ट्र में अनेक संत खड़े हैं, जिनमें ब्राह्मण भी हैं, शूद्र भी हैं। गुजरात में भी संत आन्दोलन खड़ा है। उसमें शूद्र–ब्राह्मण सभी हैं। इस संत आंदोलन–भक्ति आन्दोलन को हम इस तरह से देखें कि यह राष्ट्रीयता का बोध कराने वाला आंदोलन है, यह इस्लाम के आक्रमण को चुनौती देने वाला आंदोलन तो है ही। निराश हो गई हिंदू जाति को मंच देता है। उसके आत्मविश्वास को बढ़ाता है, निराशा को हटा देता है। साथ ही साथ यह आंदोलन सारे देश में चलता है। हिंदू समाज, इस देशव्यापी आंदोलन के भरोसे बाहर से आये आक्रमणकारी को चुनौती दे देता है। इस्लाम में मीरी और पीरी की जो परम्परा थी, वह बहुत बड़ी चुनौती थी। संतों ने भी वह परम्परा शुरू की। कुछ ऐसे लोग थे जो अपने आप को कहते थे कि हम पीर हैं, हम प्रेम की भाषा बोलते हैं, राजा और सेना तलवार की भाषा बोलते हैं। तब उस उस परिस्थिति में इन संतों ने कहा कि–चिंता मत करो। देश–समाज के रक्षार्थ मीरी और पीरी की दो तलवारें लेकर जो सिख लोग खड़े हो गए, उन सिखों के खड़े होने की प्रेरणा में भक्ति आंदोलन ही है। गुरु नानक देव से लेकर गुरु गोविंद सिंह के आने तक उन दो तलवारों को एक तलवार में बदलकर खांडे का रूप जिन्होंने दे दिया, वह गुरु गोविंद सिंह हैं। पंचम गुरु के बाद दो तलवारों की परम्परा बनी। गुरु हरगोविंद सिंह दो तलवार रखते थे। दशम गुरु ने कहा कि दो तलवारों की

जरूरत नहीं। दोनों तरफ धार वाला खांडा रखो। वह सेना गठित करते हैं, खालसा सजाते हैं, घोड़े का दान माँगते हैं, बड़े–बड़े शस्त्रों की पूजा करते हैं। वह संत भी हैं और सिपाही भी हैं। वह आध्यात्मिक भी हैं और योद्धा भी हैं। यह संत आंदोलन–भक्ति आन्दोलन देश की सुरक्षा करने के लिए कैसे खड़ा हो जाता है, इसका अध्ययन करने की आवश्यकता है। खालसा सजाते समय गुरु गोविंद सिंह कहते हैं – "अगम शूरवीरा उठहिं सिंह योद्धा, पकड़ तुरकगण कऊँ करै वै निरोधा। सकल जगत मंहि खालसा पंथ गाजै। जागै धरम हिन्दू, तुरक ढुंढ भाजै।।" भक्ति और आराधना करते–करते ये संत सेना भी सजाने लगे। आध्यात्मिक साधना करते हुए उन लोगों ने बड़ी–बड़ी सेनाएँ खडी कर दीं और अपने देश की पश्चिमी सीमा को बचाया। ये अगम शूरवीर सिख योद्धा ऐसे संत है, जो भक्ति भी करते हैं और सेना भी सजाते हैं। संतों ने और संतों के द्वारा खड़ी की गई सेना ने इस देश और समाज को बचाया। यही गुरु गोविन्द सिंह खालसा सजाते समय भी ब्रह्म की भक्ति माँगते हैं – "यही दास माँगे कृपासिंधु कीजै, स्वयं ब्रह्म की भक्ति सर्वत्र दीजै।।" भक्ति माँगते–माँगते, ये संत सेना सजाते हैं, हाथ में खड्ग धारण करते हैं और देश की रक्षा करते हैं। इस दृष्टि से भी भक्ति आंदोलन के अध्ययन की आवश्यकता है। महाराष्ट्र में शिवाजी महाराज के खड़ा होने से पहले वहाँ जो बड़ा संत आंदोलन चला है, उसका अध्ययन किया जाना चाहिए। वहाँ समर्थ गुरु रामदास, तुकाराम सहित बहुत सारे संत हैं। सब मिलकर यही कहते हैं कि– "धर्मासाठी मरावे मरोनी अवध्यांसी मारावें। मारिता मारित घ्यावें राज्य आपुलें।।" अर्थात धर्म के लिए मरना सीखो। मारते–मारते

मर जाओ, लेकिन अपना राज्य स्थापित करो। यह संत आंदोलन का एक विशिष्ट पक्ष है।

यह संत आंदोलन देश के प्रत्येक प्रांत में, प्रत्येक बिरादरी में, प्रत्येक भाषा में, संस्कृत से निकलकर लोक भाषा में कैसे आ जाता है, इसका भी अध्ययन आवश्यक है। दूसरा इन संतों ने प्रभु की आराधना में किसी भी भेद को नकार दिया। चैतन्य महाप्रभु के सामने जब यह बात आयी कि हमारे 'हरि बोल–हरि बोल' कीर्तन में तो सभी जाति के लोग आ जाते हैं, तब उन्होंने कहा – 'जेइ भजे सेइ बड़ो अभक्त हीन क्षार। कृष्ण भजने नहीं जाति कुल विचार।।" उनके अनुसार जो भगवान् का भजन करे वही बड़ा है और जो अभक्त है, वह हीन है। कृष्ण के भजन में जाति और कुल का विचार मत करो। इस तरह से हर व्यक्ति अपने को प्रभु के साथ जोड़ता चला जा रहा है। जब रैदास ने कहा– "प्रभु जी तुम चंदन हम पानी" तब रैदास ने प्रभु के साथ अपने को जोड़ लिया। रैदास का भक्ति–भाव ऐसा है कि वह प्रभु के साथ बराबरी की चर्चा करते हैं। रैदास के मन में हीनता या छोटेपन का भाव नहीं है। वे कहते हैं कि प्रभु जी हमारे बिना तुम्हारी सुगंध कोई नहीं पाएगा। 'तुम दीपक हम बाती'। बाती की कोई कीमत नहीं है, पर हमारे बिना तुम जलोगे कैसे? तुम सोने हो, हम सुहागा हैं, हमारे बिना तुम्हारी कोई कीमत नहीं। तुम मोती, हम धागा हैं। हमारे बिना तुम्हारी कोई कीमत नहीं। उन्होने बराबरी के स्तर पर प्रभु के साथ बातचीत की है अर्थात समाज का वह वर्ग जो अपने को छोटा मानता था या समाज के अन्य वर्ग जिसे छोटा मानते थे, उनके अंदर आत्मविश्वास भर देने का काम इन लोगों

ने बड़ी सुंदरता के साथ किया। इनके अनुसार बड़े–बड़े यज्ञ की जरूरत नहीं, बड़े–बड़े मंदिर, पूजा–पाठ, कर्मकांड की जरूरत नहीं है। इन संतों ने सरल पूजा पद्धति अपनाने पर बल दिया। ज्यादातर ने तो यही कहा है कि प्रभु का सुमिरन करो, कुछ नहीं लगेगा, माला भी हाथ में लेने की जरूरत नहीं है 'कर का मनका डारि दे मन का मनका फेर' अर्थात इसमें दो पैसे की माला की भी आवश्यकता नहीं है।

भक्ति का यह जो आंदोलन है, वह एक है और सारे देश को एक करता है। इन संतों ने विभिन्न प्रान्तों की यात्राएँ की हैं। जब देश में किसी भी प्रकार की राजनीतिक एकता नहीं थी, उस समय संत आंदोलन, देश में फिर से आध्यात्मिक–दार्शनिक एकता लाता है। गुरु नानक देव रामेश्वरम, जगन्नाथपुरी, काशी, प्रयाग, द्वारिका जाते हैं, वह प्राग्ज्योतिषपुर–गोहाटी जाते हैं। देश का कोई भी ऐसा तीर्थ नहीं है, जहाँ गुरु नानक देव नहीं गए हैं। शंकरदेव सारे देश में भ्रमण करते हैं। चैतन्य महाप्रभु वैष्णव तीर्थ स्थानों पर जाते हैं। मीराबाई राजस्थान से निकलकर मथुरा आ जाती हैं, घूमती–फिरती द्वारिका तक चली जाती हैं।। नामदेव महाराष्ट्र से निकलकर पंजाब में घूमते रहते हैं। इन संतों ने देश को इस तरह एक धागे में बाँधकर रख दिया। एक ओर भक्ति को भेदभाव स्वीकार नहीं है, वहीं दूसरी ओर भक्ति आंदोलन को देश एक लगता है। कितनी सुंदर बात है कि किसी भी संत या भक्त ने अपने क्षेत्रीय–भाव को प्रकट नहीं किया, क्षेत्रीयता को बढ़ावा नहीं दिया। चैतन्य ने बंगाल की बात नहीं की बल्कि भारत की बात की। गुरु नानक ने पंजाब की बात नहीं की बल्कि भारत की

बात की। यह लोग आज का संविधान पढ़े हुए लोग नहीं थे। उन लोगों ने कभी 'वी द पीपल आफ इंडिया' नहीं सीखा था, लेकिन हजारों वर्षों की परंपरा से वह देश को एक मानते चले आ रहे थे। असम के शंकरदेव, पंजाब के गुरु नानक, बंगाल के चैतन्य महाप्रभु, 'भारत–भारत' बोलते हैं। ये ऐसा अद्भुत आंदोलन है, जो देश को एक सूत्र में बाँधने की कोशिश करता है।

समाज के प्रत्येक वर्ग को नेतृत्व देने का इनका संकल्प अडिग है। संत आंदोलन ने जितनी संख्या में आध्यात्मिक और श्रेष्ठ महिला रचनाकारों को आगे किया, उतना यूरोप का रेनेसां भी आगे नहीं कर सका। जनाबाई, मुक्ता बाई, सुरसरि बाई, लल्लेश्वरी देवी, संत मोल्ला, गुजरात की लीरल बाई आदि सैकड़ों की संख्या में श्रेष्ठ महिला रचनाकार हैं, जो संत आन्दोलन में आगे आयीं। इसमें हर बिरादरी की महिलाएँ शामिल हैं। बहुत बड़ी संख्या उनकी भी है जिनकी बिरादरी किसी को पता ही नहीं है। आंध्र प्रदेश की संत मोल्ला की बिरादरी क्या है? बहिणा बाई, जना बाई, सुरसरी बाई और लीरल बाई हैं, इनकी बिरादरी किसी को मालूम नहीं हैं। वैष्णव संतों में तमिलनाडु की प्रमुख स्त्री संत आंडाल किस बिरादरी की हैं, किसी को नहीं पता। आज से लगभग सात सौ–आठ सौ या एक हजार साल पहले भारत की महिलाओं ने आगे आकर भक्ति साहित्य का निर्माण किया। हर प्रांत की महिलाओं ने भक्ति आंदोलन में योगदान दिया। उन्होंने लेखन कार्य किया है, आध्यात्मिक रचनाएँ की हैं और आश्चर्य की बात यह है कि इसमें बावरी साहिबा और ताज बीबी जैसी मुस्लिम महिलाएँ भी आगे आयीं। यह आंदोलन सभी जाति–धर्म

की महिलाओं को साथ लेकर चलता है।

इन संतो ने सैकड़ों संगीतकारों का भी उदय किया। संगीत को नए नए आयाम दिए। भजन को भिन्न–भिन्न रागों में बाँधा। ढोल, मृदंग, मंजीरा, सितार, वीणा, झाल, चिमटा आदि नए–नए संगीत के यंत्रों का आविष्कार किया। इन संतों ने संगीत के क्षेत्र में सैकड़ों प्रकार के राग उद्भूत किए।

भक्ति का जो आंदोलन है, वह कायरों का काम नहीं है। संत कहते हैं कि 'भगति देहुलि राम की नहिं कायर का काम। सीस उतारै हाथ करि सो लेसी हरिनाम।।' अर्थात यदि राम के दरबार में प्रवेश करना है तो अपना शीश हाथ में लेकर आगे बढ़ो। एक और प्रमुख बात ये है कि हमारे संतों ने राज दरबारों की शरण नहीं ली। राजाओं से याचना नहीं की। राजाओं की स्तुति में गायन नहीं किया। वे तो राम, शिव और कृष्ण के दरबार में थे। वे लोग तो राज दरबार से दूर अपने प्रभु की साधना करते थे। राजाओं के यहाँ नहीं गए, राजाओं ने इन्हें बुलाया भी तो उनके दरबार में जाकर भी इन्होंने प्रभु के समान उनका सम्मान नहीं किया। इन संतों में कैसी हिम्मत है, इसके उदाहरण देखिये– कुम्भनदास, अकबर के दरबार में बुलाये गए। पालकी आई किन्तु वे पालकी में नहीं बैठे, पैदल ही गये। कुंभनदास संभवतः प्रयाग से फतेहपुर सीकरी पैदल ही आये थे, लेकिन वहाँ बैठे नहीं, खड़े रहे और अकबर को यह सुना कर आए – 'संतन को कहा सीकरी सो काम'। इतना ही नहीं, अकबर के दरबार में ये भी कहकर आये कि 'जिनके मुख देखत अघ लागत, तिनको करन पड़ी प्रणाम', अर्थात जिनका मुँह

देखने से पाप लगता है, उनको यहाँ प्रणाम करना पड़ता है। इसलिए मुझे फिर कभी न बुलाना। इन संतों में इतना साहस है। तुलसीदास से कहा गया कि यदि आप दरबार में आएंगे तो बादशाह आपको बड़ा पट्टा देंगे, आपको बड़ी जागीरदारी मिल जाएगी। तब तुलसी कहते हैं कि "हम चाकर रघुवीर के पट्यो लिखो दरबार, अब तुलसी का होहिंगें नर के मनसबदार।' अर्थात् राम के दरबार में हमारी लिखा–पढ़ी हो चुकी है। हम वहाँ जाकर क्या करेंगे? मतलब यह कि हम किसी मनुष्य की मनसबदारी नहीं करेंगे। बादशाह के दरबार में जाकर याचना करना, अपने को प्रतिष्ठित मानना या प्रतिष्ठा प्राप्त करने की कोशिश करना, इन संतों को कभी सुभाया ही नहीं। ये लोग राज दरबार से नहीं, राम–दरबार, शिव–दरबार से जुड़े थे। ये निर्गुण ब्रह्म के दरबार से जुड़े थे। इन्हें कोई लोभ नहीं था, इनकी कोई महत्वाकांक्षा नहीं थी।

विदेशी सत्ता के खिलाफ जमकर मोर्चा लेने का काम भारतीय संतों–भक्तों ने पूरे देश में किया है। इस आयाम का भी अध्ययन आवश्यक है। ध्यान रखिए कि भक्ति सभी सद्गुणों की दाता है। भक्ति सैनिक भी खड़े करती है। भक्ति जीवन में प्रामाणिकता, सुचिता, पवित्रता भी लाती है। भक्ति, व्यक्ति को विनम्र बनाती है। भक्ति सारे भेदों में अभेद की रचना करती है। भक्ति सारे भेदों को मिटा कर सबको एकात्मबोध कराने का काम करती है। विद्वानों को आज यह बात समझनी होगी कि भक्ति आंदोलन के इन सांस्कृतिक सरोकारों को गहराई से देखने की आवश्यकता है।

डॉ. राम मनोहर लोहिया जी की एक पुस्तक है– 'धरती माता भारत माता'। उसमें राम, कृष्ण, शिव पर बड़े अध्याय हैं। इसमें राम मनोहर लोहिया कहते हैं कि ''मैं मंदिर जाकर पूजा–पाठ करने वाला आदमी नहीं हूँ। मंदिर की मूर्ति में मेरा कोई विश्वास भी नहीं है, लेकिन भारत के एक मंदिर के कोने में तुम जाकर चुपचाप खड़े हो जाओ, आधा–एक घंटे के अंदर तुम्हारी आँखों के सामने से पूरा भारत निकल जाएगा।"

यह कितनी बड़ी बात है कि रामेश्वरम के मंदिर के एक कोने में खड़े हो जाइए, एक घंटा देखते रहिए, पंजाब, हिमाचल, हरियाणा, गुजरात, उत्तर प्रदेश और बिहार सहित भारत के सभी प्रान्तों के सैकड़ों–हजारों लोग, एक तरह से सारा हिंदुस्तान आपकी आँखों के सामने से निकल जाएगा। ऐसी कौन सी बात है जो इनको रामेश्वरम, केदारनाथ और देश के विभिन्न मंदिरों में घुमा रही है? ये सब राष्ट्रीय एकता के लिए परिक्रमा कर रहे हैं। हमारी इस आध्यात्मिक धारा ने धरती के प्रति भक्ति–भाव को ऐसे शिखर पर स्थापित कर दिया कि प्रत्येक नागरिक वहाँ जाने में धन्यता का अनुभव करता है।

डॉ0 लल्लन राय ने लिखा है कि "भक्ति आंदोलन की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि इसने समूचे देश को एक सांस्कृतिक सूत्र में आबद्ध किया है। इस प्रक्रिया में दक्षिण के वैष्णव आचार्य 'प्रस्थानत्रयी' की नयी और उदार व्याख्या के साथ ही राम और कृष्ण के साथ उत्तर की यात्रा करते हैं। चैतन्यदेव के शिष्यों के माध्यम से बंगाल, वृंदावन से जुड़ता है। नाथद्वारा, द्वारिका, कन्याकुमारी के साथ ही अयोध्या, मथुरा, वृन्दावन जैसे

नए सांस्कृतिक केंद्र स्थापित होते हैं। प्रसिद्ध शैव नगरी काशी सबसे बड़ा वैष्णव तीर्थ बन जाती है।" ये हमारी संत परंपरा हमारे भक्ति आंदोलन की देन है। प्रसिद्ध समाजवादी विचारक रामविलास शर्मा विशेष रूप से वामपंथियों को समझाते हुए लिखते हैं कि "भक्ति आंदोलन की यह बहुत बड़ी विशेषता है कि उसमें द्विजों के साथ शूद्र हैं। हिंदुओं के साथ मुसलमान भी हैं। उस तरह का सांस्कृतिक आंदोलन आज फिर चलाया जा सकता है, शर्त यह है कि प्रगतिशील आलोचक भक्ति आंदोलन की आंतरिक एकता को समझें, सूफियों से हिंदू भक्तों को, हिंदू भक्तों में निर्गुण पंथियों से सगुण पंथियों को, सगुण पंथियों में कृष्ण भक्तों को राम भक्तों से न भिड़ा दें। अपने इतिहास के प्रति सचेत हिन्दी जाति स्वयं सचेत होकर, एकताबद्ध होकर राष्ट्रीय एकता की आधारशिला बन सकती है।" रामविलास शर्मा ने आगे लिखा है कि 'भारत की ऐसी कौन सी भाषा है जिसके साहित्य में भारत के शूद्रों का योगदान न हो? भक्ति आंदोलन की विशेषता ही यह है कि उसमें शूद्रों ने आगे बढ़कर भाग लिया।'

नामवर सिंह भी प्रगतिशील और वामपंथी आलोचक हैं। वे लिखते हैं कि ''इस देश में जितने भी क्रांतिकारी कार्य हुए वे धर्म के लोकोन्मुखी स्वरूप को लेकर ही हुए। संस्कृत ने तो देश को शिष्ट स्तर पर जोड़ा लेकिन संत वाणी ने लोकस्तर पर एकात्मता स्थापित की है। भारत में जब राजनीतिक एकता नहीं थी, तब संत साहित्य ने सांस्कृतिक एकता को बनाए रखा।''

समय की मर्यादा के कारण मैं इसके विस्तार में नहीं जा रहा हूँ। आप लोगों से आग्रह है कि आप इस आंदोलन की

गहराई में जाइए। सारे आंदोलन को व्यापकता से देखिए। इस आंदोलन में बड़ी ताकत है। यह आंदोलन भक्ति आंदोलन है। संत आंदोलन इसका छोटा सा हिस्सा है। यह आध्यात्मिक गंगा की एक नहर की तरह है। इस भक्ति में बड़ी ताकत है। यह भक्ति आन्दोलन, समाज की हर एक समस्या का समाधान दे सकता है। पहले तो ठीक दृष्टि से इसका अध्ययन करना, समझना और फिर लोगों के सामने रखना होगा।

तमिलनाडु के कन्याकुमारी में जिसकी प्रतिमा खड़ी है, वह तिरुवल्लुवर दो हजार वर्ष पूर्व तमिल में जो लिखता है, लगभग पाँच सौ वर्षों के बाद कबीर वही बात काशी में बोलते हैं। पन्द्रहवीं शताब्दी में जो बात पंजाब में गुरु नानक बोलते हैं, वही बात शंकरदेव असम में बोलते हैं। जो बात बंगाल में चैतन्य महाप्रभु बोलते हैं, वही बात मथुरा में सूरदास बोलते हैं। ऐसी कौन सी बात है कि भाषा अलग हैं, प्रांत अलग हैं, जातियाँ अलग हैं, लेकिन लोगों के मन के उद्‌गार एक ही हैं? वह हमारी दार्शनिक एकता है, आध्यात्मिक ढाल है, जो सबको जोड़ कर रखता है। यह आंदोलन उस समय की परिस्थितियों, आवश्यकताओं में उपजाऊ आंदोलन है। इसने बहुत बड़ी भूमिका निभाई है। दुनिया का कोई भी विद्वान इसका अध्ययन करता है तो वह चमत्कृत हो जाता है। दुनिया के कई देशों के विद्वान 'रामचरितमानस' का अनुवाद अपने देश की भाषाओं में करते हैं। कोई इसका अनुवाद जापानी में करता है, तो कोई रशियन में। रामचरितमानस के संबंध में क्या–क्या नहीं बोलते? इतना बड़ा ग्रंथ तुलसी ने लिखा और बहुत बड़ी सामाजिक–एकता

का प्रदर्शन किया। विंसेट ए. स्मिथ एक बड़ा लेखक है जिसने 'अकबर दि ग्रेट' नामक एक पुस्तक लिखी है। उस पुस्तक में वह तुलसी के बारे में लिखता है– "Tulsidas is the tallest tree in the magic garden of mediaeval Hindu poetry- His name will not be found in Ain - E - Akbari or in the pages of Muslim Analysts or in the books of European Authors based on the narratives of the Persian historians- Yet that (Hindu) was the greatest man of his age in India greater even than Akbar himself in as much as the conquest of the hearts and minds of millions of men and women affected by the poet was an achievement infinitely more lasting and important than all the victories gained in the war by Monarch-" उसके अनुसार, अकबर ने जो विजय पाई, उससे बहुत बड़ी विजय तुलसीदास ने पाई है। वह करोड़ों लोगों के दिलों पर राज करता है। ग्रियर्सन ने तुलसी के बारे में लिखा है कि "If we take the influence exercised by him at the present time as our test he is one of the three or four great writers of Asia----Over the whole gangetic valley his great work (The Ramayan) is better known than the Bible is in England-" ग्रियर्सन के अनुसार इंग्लैंड में बाईबिल का जितना प्रभाव है, उससे ज्यादा गंगा–यमुना के सारे क्षेत्र में 'रामचरितमानस' का प्रभाव है।

वास्तव में इन संतों का प्रभाव बड़ा गहरा है। उनकी वाणी बड़ी दूर तक प्रभावित करती है। संत साहित्य का अध्ययन और

मूल्यांकन करते समय वह समय और परिस्थिति ध्यान में रखनी चाहिए, जिस समय इन संतों ने समाज को जागृत किया, मनोबल बढ़ाया और समाज को नेतृत्व दिया, समाज के आत्मविश्वास में वृद्धि की, लोक भाषाओं को बड़ा साहित्य दिया और उस विकट परिस्थिति में भी समाज को आगे लेकर आए। आज के परिदृश्य में भक्ति आंदोलन कितना प्रासंगिक है? आध्यात्म की धारा वर्तमान समय में कौन सी दिशा लेकर आगे बढ़े, जिससे वर्तमान की समस्याओं का समाधान हम उसमें ढूँढ़ सकें, इस दृष्टि से संत साहित्य के अध्ययन की आवश्यकता है। मैं विनम्रतापूर्वक सबको प्रणाम करते हुए अपनी बात समाप्त करता हूँ। धन्यवाद।

(१३ जुलाई, २०२० को 'शोध एवं विकास प्रकोष्ठ', महात्मा गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी, बिहार द्वारा आयोजित 'संत साहित्य' सामाजिक एवं सांस्कृतिक सन्दर्भ' विषयक एक दिवसीय राष्ट्रीय ई–संगोष्ठी में दिया गया व्याख्यान)

अध्यक्षीय उद्‌बोधन

प्रो. संजीव कुमार शर्मा
कुलपति
महात्मा गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय
मोतिहारी, बिहार

महात्मा गाँधी केंद्रीय विश्वविद्यालय के शोध एवं विकास प्रकोष्ठ के तत्त्वावधान में आयोजित इस ई–संगोष्ठी के मुख्य अतिथि– मेरे अत्यंत आदरणीय एवं शुभेच्छु डॉ. कृष्ण गोपाल जी, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान के माननीय अध्यक्ष प्रो. सदानंद गुप्ता जी, हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय के माननीय कुलपति और मेरे अग्रज–मित्र प्रो. कुलदीप चन्द्र अग्निहोत्री जी, मेरे अत्यंत प्रिय आत्मीय अनुज प्रो. चंदन कुमार चौबे जी, इस कार्यक्रम में प्रारंभ से जुड़े हुए नॉर्थ ईस्टर्न हिल यूनिवर्सिटी के माननीय कुलपति प्रो. एस. के. श्रीवास्तव जी, प्रो. मंजुला राणा जी, भूतपूर्व कुलपति प्रो. एच. के. सिंह जी, उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान के अध्यक्ष प्रो. वाचस्पति मिश्र जी, प्रो. मानस पांडेय जी, महात्मा गाँधी केंद्रीय विश्वविद्यालय के विभिन्न विभागों के मेरे आदरणीय शिक्षक मित्रो और इस गूगल मीट और फेसबुक पेज के माध्यम से अनेकानेक स्थानों से जुड़े हुए सहस्त्रों जिज्ञासुओं को मैं महात्मा गाँधी की 'पहली कर्मभूमि' चम्पारण से प्रणाम करता हूँ।

सर्वप्रथम प्रियंवर श्याम नन्दन और उनके साथ प्रो. राजेंद्र सिंह, प्रो. राजीव कुमार की पूरी टीम को इस बात के लिए बहुत–बहुत साधुवाद और बधाई देता हूँ कि उन्होंने एक अद्‌भुत कार्यक्रम किया। पिछले लगभग 3 घंटे से हम सब

लोगों ने साहित्य, भक्ति, आध्यात्म, संत परंपरा, राष्ट्रीय एकत्व के विभिन्न आयामों पर उद्‌भट विद्वानों को सुना और मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि स्वागत वक्तव्य के साथ डॉ. अंजनी श्रीवास्तव ने विषय का आंशिक प्रवर्तन करते समय महत्त्वपूर्ण आयामों का स्पर्श किया और बाद में श्याम नन्दन ने भी कुछ संकेत विषय के संदर्भ में किए। सदानंद गुप्त जी ने हिंदी साहित्य में संत परंपरा और संत साहित्य की परंपरा के एक विस्तृत स्वरूप से हमें परिचित कराया। बाद में चंदन जी ने उसके सैद्धांतिक आयाम से भी हम को अवगत कराया और उसके व्यवहारिक पक्षों में कहाँ–कहाँ समझने और विश्लेषण करने में कठिनाइयाँ आ रही है, उनसे भी हम सब को अवगत कराया। प्रो. कुलदीप चन्द्र अग्निहोत्री जी ने एक महत्त्वपूर्ण संकेत चलते–चलते किया। आप लोगों ने भी उस पर ध्यान दिया होगा। उन्होंने कहा कि यह वेबिनार, सेमिनार का एक निराकार स्वरूप है, जिसे हम साकार स्वरूप में सेमिनार में देखते थे। रोचक तरीके से अपनी बात को प्रस्तुत करने उनका कौशल है और बाद में माननीय गोपाल कृष्ण जी ने संत की परिभाषा में ही एक व्यापक परिवर्तन किया और अध्यात्म को साथ जोड़ते हुए 'संत' की परिभाषा दी। सामान्यतः हम यह मान लेते हैं कि उसका संबंध केवल भक्ति से है। विश्वेश वाग्मी जी ने जब मंगलारण प्रारंभ किया तो आज लीक से हटकर हुए भर्तृहरि का उल्लेख किया था और भर्तृहरि एक जगह कहते हैं –

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णा–
स्त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः।
परगुणपरमाणून्पर्वतीकृत्य नित्यं

निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः ॥

अर्थात् सन्त मन, वचन और शरीर द्वारा अमृत रूपी पुण्य से युक्त, अपने उपकारों द्वारा त्रिभुवन को प्रसन्न करने वाले तथा दूसरे के परमाणु जैसे गुणों को पर्वत जैसा बताने वाले होते हैं तथा स्वयं में सन्तुष्ट रहने वाले होते हैं। इस प्रकार जो पूरे त्रिभुवन का प्रीतिपूर्वक उपकार करते हुए करते हुए सबको प्रसन्नता देने वाले, दूसरों के परमाणु जैसे गुणों को भी पर्वत के आकार जैसे दिखाते हैं, वह संत हैं। कालिदास मालविकाग्निमित्रम में संत का उल्लेख करते हुए ज्ञानवान के अर्थ में प्रयोग करते हुए लिखते हैं–

पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्यान्यन्तरद् भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः ॥

अर्थात् जो सन्त लोग, विवेकशील लोग हैं, वे किसी भी विषय की गहन मीमांसा करने के पश्चात् ही अपना निर्णय देते हैं। कालिदास यहाँ संत का उल्लेख विवेकशील, ज्ञानवान, बुद्धि मान के अर्थ में करते हैं। ऐसे ही भर्तृहरि ने एक जगह सन्मित्र के लक्षण बताते हुए लिखा कि संत कहते हैं–

पापान्निवारयति योजयते हिताय
गुह्यं निगूहति गुणान्प्रकटीकरोति।
आपद्‌गतं च न जहाति ददाति काले
सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः ॥

सन्मित्र के जिन गुणों का भर्तृहरि ने उल्लेख किया है, उन सभी गुणों से वे भी ओत–प्रोत रहने वाले होते हैं। इससे यह

ज्ञात होता है कि प्राचीन परम्परा में सन्तों की बुद्धि अत्यन्त ही सात्विक होती थी जो लोकोपकार की भावना से युक्त होती थी। संत की विद्वता में, संत की समाज के प्रति संचेतना में, संत की जागरूकता में, किसी प्रकार की भक्ति कोई बाधा नहीं बनती है, यह अद्भुत बात है। डॉ. गोपाल कृष्ण जी ने जब आध्यात्मिक की बात की तो मुझे भगवद्गीता में कथित श्री कृष्ण की एक परिभाषा याद आई–

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञै गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥

यहाँ आध्यात्म में नित निरत उन संत लोगों की बात है जो सुख–दुःख की संज्ञाओं से परे जा चुके होते हैं तथा उनके ज्ञान में किसी प्रकार की बाधा नहीं होती।

यह विचार संपूर्ण भारत में अलग–अलग स्थानों पर सामान रूप से मिलता है। दक्षिण में तमिल के एक प्रसिद्ध कवि कनियन पुन्मुन्द्ररनार ने कहा है– ''यादुम ऊरे यावरम केलिर'' जिसका आशय है कि संपूर्ण विश्व मेरा परिवार है और मैं संपूर्ण विश्व का एक अंग हूँ। समस्त भारतीय परम्परा को हमने आर्य और द्रविड़ दो भागों में विभाजित होने का एक भ्रम पाल लिया और एक महत्त्वपूर्ण बात यह भी है कि भारतीय परम्परा में भक्ति को केवल एक धर्म विशेष या संप्रदाय विशेष या पंथ विशेष तक सीमित करने का विचार नहीं था। भक्ति–साहित्य में मैं प्रायः रहीम का इस बारे में उल्लेख करता हूँ। अब्दुल रहीम खानखाना अकबर के नवरत्नों थे और उनका संस्कृत का एक प्रसिद्ध सा श्लोक में उल्लेखित करता हूँ। गंगा का जो अवतरण हुआ उसके सन्दर्भ में हमारी परंपरा में कहा जाता है कि वामन अवतार में

विष्णु जी, राजा बलि के पास जब तीन पग नापने गए तब उस समय तीसरा पग मापते समय उनका पैर राजा बलि के माथे पर लगा और उनके पैर का नाखून उखड़ गया। उससे रक्त का संचार हुआ तो भगवान् का रक्त कहीं गिरने न पाए, इसलिए ब्रह्मा जी ने उसे अपने कमंडल में ले लिया। जब भगीरथ प्रार्थना करने गए तो शिवजी ने कमंडल से उसे अपने सिर की जटाओं में ले लिया और वही गंगा बनी। वह तीन रास्तों से चली– आकाशगंगा, पातालगंगा और भूमि पर चलने वाली गंगा। उसी सन्दर्भ में रहीम कहते हैं–

अच्युत–चरण–तरंगिणी शशि शेखर मौलि मालती माले।
मम तनु वितरण समये हरता देया न मे हरिता।।

अर्थात् हे परमपिता विष्णु के चरणों से तरंगित होने वाली और शशि शेखर जिनके माथे पर चंद्रमा रखा हुआ है, उनके सिर की माला बनने वाली, हे गंगा माँ! जब मेरी मिट्टी की राख इस जमीन में मिले तो जमीन में मिलते समय मुझे शिवत्व देना, विष्णुत्व मत देना क्योंकि विष्णु ने तुम्हें चरणों में रखा है। मैं तुम्हें शिव के रूप में सिर माथे रखना चाहता हूँ। अब्दुल रहीम खानखाना यह बात भक्ति काल में कह रहे हैं। उसी भक्ति काल में रसखान कह रहे हैं कि–

ब्रह्म में ढूँढ्यौ पुरानन गानन बेद–रिचा
सुनि चौगुने चायन।
देख्यो सुन्यौ कबहुँ न कितूँ वह कैसे
सरूप औ कैसे सुभायन।।
टेरत हेरत हारि पर्यो रसखानि बतायौ न लोग–लुगायन।
देखौ दुरौ वह कुंज कुटीर मैं
बैठो पलोटत राधिका पायन।।

मैंने जिन्हें वेदों में ढूँढा, ऋचाओं में ढूँढा, पुराणों में ढूँढा, मैंने देखा कि वह कृष्ण कुटीर–कुञ्ज में राधिका के चरण दबा रहा है। यह जो भक्ति–भाव है, वह मुस्लिम कवियों में भी है और आपको याद है कि उस भक्ति साहित्य के सन्दर्भ में हमारे यहाँ हिंदी साहित्य के अध्येता शिक्षक पढ़ाते हैं कि– 'इन मुसलमान हरिजनन पे कोटिक हिन्दु वारिये।' ऐसे भगवत–भक्त मुस्लिमों पर करोड़ों हिंदुओं को निछावर किया जा सकता है। इसलिए भारत में ये भक्ति की, संतत्व की, ज्ञान की परंपरा ज्ञानेश्वर में भी है, तुकाराम में भी है, नामदेव में भी है, नरसी मेहता में भी, तिरुवल्लुवर में भी है, सुब्रमण्यम भारती में भी है, शंकरदेव में भी है। पूरे भारत में आप जहाँ कहीं जाएंगे, संपूर्ण भारत में आपको देखने को मिलती है। इस संतत्व की परंपरा में एकत्व की परंपरा है, एकात्म की परंपरा है, एक भाव की परंपरा है। 'वैविध्य में ऐक्य' की परंपरा है। इसकी सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से समीक्षा की आवश्यकता है। जो संदेश श्री कृष्ण गोपाल जी ने भी दिया है। मुझे लगता है कि आज हमारे विद्वानों ने बहुत महत्त्वपूर्ण बातें कहीं। इस दिशा में हमारे शोध और विकास प्रकोष्ठ को, विशेष रुप से हिंदी विभाग को आगे बढ़कर कुछ गंभीर शोध–कार्य अपने शोधार्थियों के माध्यम से कराने चाहिए और पुस्तक के रूप में प्रकाशित करना चाहिए जिससे महात्मा गाँधी केंद्रीय विश्वविद्यालय का यह अकादमिक अनुष्ठान अपनी संपूर्णता को प्राप्त कर सके, अपने उपादेयता को प्राप्त कर सके। मैं आप सबको ऐसे सफल सुखद और ज्ञानवर्धक आयोजन के लिए बहुत–बहुत बधाई, बहुत–बहुत शुभकामनाएं देता हूँ।

नमस्कार!